16

छाँड़त क्यों नहिं रे...

छाँडत क्यों नहि रे, हे नर रीति अयानी।
बार बार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आनाकानी।।

विषय न तजत न भजत बोध व्रत, दुःख सुख जाति न जानी।
शर्म चहै न लहै शठ ज्यौं, घृत हेतु-विलोवत पानी।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

तन धन सदन स्वजन जन तुझसों, ये पर्याय विरानी।
इन परिणमन विनश उपजन सों, तैं दुःख सुखकर मानी।।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

इस अज्ञान तें चिर दुःख पाये, तिनकी अकथ कहानी।
ताको तज, दृग ज्ञान चरण भज, निज परिणति शिवदानी।।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

यह दुर्लभ नर भव सुसंग लहि, तत्त्व लखावन वाणी।
'दौल' न कर अब पर में ममता, धर समता सुखदानी।।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

हे नर ! तू अपनी अज्ञान दशा को क्यों नहीं छोड़ देता ? सदगुरू तुम्हें बार-बार शिक्षा देकर सचेत कर रहे हैं, किन्तु तू आनाकानी (बहाने) कर रहा है।

हे जीव ! तू न तो विषयों का त्याग करता है, और न ही सम्यग्ज्ञान एवं संयम की उपासना करता है और न ही दुःख-सुख के सच्चे स्वरूप को जानता है। यही कारण है कि तू सुख तो चाहता है किन्तु उस की प्राप्ति नहीं कर पाता है; उसी प्रकार जिस प्रकार कोई व्यक्ति घी प्राप्त करने के लिये पानी को बिलोने रूपी कार्य तो करता परंतु पानी के बिलोने से घी कैसे प्राप्त होगा ।

हे मनुष्य! शरीर, धन, मकान, परिवारजन, मित्र आदि तो तुझसे अत्यंत भिन्न पर्याय हैं और तूने व्यर्थ ही उनके नष्ट और उत्पन्न होने को अपने दुःख-सुख का कारण मान रखा है

और इसी अज्ञान के कारण तूने अनादि से इतने दुःख प्राप्त किये हैं कि उनकी कथा कही नहीं जा सकती। अतः अब तू इस अज्ञान कार्य को त्याग दे और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना कर - यही आत्मपरिणति तुझे मुक्ति को प्रदान करने वाली है।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे नर! अब तो तूने इस दुर्लभ मनुष्य भव को, सत्संगति को और तत्व को दर्शाने वाली जिनवाणी को भी प्राप्त कर लिया है, अतः अब तो तू पर में ममता करना छोड़ और सुख को देने वाली समता को धारण करके सच्चा सुख प्राप्त कर।